वायस प्रबोध

दिनांक 11-01-2013

निर्मलवारिसरोवरतीरे बैठा शुभ्र मराल।
पीतचंचु उज्ज्वल लोचनयुग उन्नत जिसका भाल।
था समीप अश्वत्थ सघनतर धृतबहुशाख विशाल।
विविधवर्ण विहगावलि जिस पर मुदित बिताती काल।। 1

उनकी पुलक और क्रीड़ा से हर्षित था अति हंस।
तभी वहाँ उत्पन्न हो चला सम्भ्रम का कुछ अंश।
पुष्ट एक वायस विभिन्न शाखों पर कृतपदक्षेप।
वयगण मध्य लगा करने वह उद्धत हो विक्षेप।। 2

आभा युक्त प्रशांत हंस को देखा जब उपविष्ट।
हुआ सरोष सशंकित वायस चंचलबुद्धि अशिष्ट।
कहीं न हो जाए मम शाखा इस खग से अतिक्रांत।
जिस पर हो आसीन कर रहा मैं वयगण उद्भ्रांत।। 3

कृत विचार वायसवरूथपति बनकर बहुत विनीत।
आया हंस समीप नमन कर कौशल से अभिनीत।
कहने लगा भद्र! परिचय दें, कहाँ आपका देश।
क्या आगमन प्रयोजन है तव, हे आभामयवेश ।। 4

बोला हंस विराट व्योम में, भरते नित्य उड़ान।
हम खगता को परम व्योम का देते हैं कुछ ज्ञान।
सिखलाते हैं असत और सत का व्यहार्य विवेक।
और दिखाते सकल विहंगम, यहाँ तत्वतः एक ।। 5

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

हुआ सतर्क काक तब बोला जहाँ वर्ग संघर्ष ।
चलता हो अविराम वहाँ पर कैसा ऋत उत्कर्ष।
तुम अलीक संतुष्टि सिखाते हम शोषण प्रति युद्ध।
तुम विराग के वक्ता करते उन्नति पथ अवरूद्ध ।। 6

भूतल पर आवश्यक रोटी नभ में नहीं उड़ान।
खाली पेट कौन कर सकता प्रत्याहारी ध्यान।
जीवन की हम कला सिखाते चेष्टा अध्यवसाय।
अर्जन भोग प्रमोद पृथक् क्या जीवन का अभिप्राय।। 7

प्रत्यावर्तन करो स्वगृह को हे उपकारी हंस।
लोक व्यवस्था में सक्षम है इस वायस का वंश।
ध्वनिमत जनमत अब निर्णायक नहीं आप्त के वाक्य।
मात्र तर्क निर्णायक ऋत का यह कहते मुनि शाक्य।। 8

आज चतुर्दिक देखो उन्नति विविध क्षेत्र उत्कर्ष।
विपुल आढ्यता धार रहा है प्यारा वायसवर्ष ।
किन्तु असूयाग्रस्त व्यक्ति को होता देख अमर्ष।
उसे दीखते मात्र लोभ छल हिंसा कटु संघर्ष।। 9

आज शैक्षणिक क्षेत्र कर रहा देखो नित नव क्रांति।
निराकरण में निरत नित्य मैं पुरारूढ़ बहु भ्रांति।
आत्मघात कर रहे पुरातन पद्धति पीड़ित छात्र।
अंक बन गए थे परिमापक प्रतिभा के अति मात्र।। 10

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

श्रेणीकरण विभेद वृत्ति थी कर दी अतः अपास्त।
बिना परीक्षा दिए सफल हैं देखो छात्र समस्त।
नहीं संकुचन श्रेय, काम्य है शिक्षा का सुप्रसार।
अतः छात्र जन प्रति अतीव है वायस राज उदार।। 11

जन जन जब शिक्षित होता है चलता तब जनतंत्र।
राजनीति विद इसे मानते सदा सुशासन मंत्र।
नित नवीन संस्थान खोलते अब मेरे विश्वस्त।
निज अपत्य साफल्य हेतु हैं धनपति सब आश्वस्त।। 12

गुरूजन कृत उत्पीड़न को भी किया पूर्णतः बंद।
अब प्रसन्न सब छात्र घूमते प्रांगण में स्वच्छन्द।
प्रतिभा का प्रस्फुटन कभी क्या होता भय के साथ।
पूर्वज क्यों फिर समझ न पाए यह सीधी सी बात।। 13

कुलपति हैं सब मेरे कुल के अतः नियंत्रण साध्य।
सफल नीति के कारण मैं हूँ जनता का आराध्य।
आत्म नियंत्रण को सर्वोपरि सभी मानते संत।
जन विवेक पर अनुशासन को मैंने छोड़ा अंत।। 14

दास मलूक उक्ति ही है यह, पंक्षी करें न काम।
अतः न कहते वय जन से हम करनें को कुछ काम।
बहुत कर चुके श्रम अन्यों के शासन में वयवंृद।
मेरी सत्ता में कम से कम रहलें वे स्वच्छंद।। 15

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

जिन्हें मानते व्यसन हमारी निर्भर उनपर आय ।
कैसे करें निषेध चाहता जिसको खगसमुदाय ।
र ंजन करे प्रजा का राजा, वही कहाने योग्य ।
बहु संख्यक हैं वैद्य सुनिश्चित करनें को आरोग्य ।। 16

द्यूत पक्ष में देते खग जब नल नृप का आख्यान ।
और दिलाते धर्मराज के द्यूत प्रेम का ध्यान ।
जानबूझ कर जनमत के ही रहता मैं अविरुद्ध ।
रहते निर्धन सदा खिलाड़ी आयोजक समृद्ध ।। 17

यदि कोई भूखा रह जाता जतलाता भ्रातृत्व ।
निराहारिता और व्रतों का बतलाता हूँ तत्व ।
देता हूँ मैं वर्धमान का पावनतर दृष्टान्त ।
कौशल से कर देता अपने बांधव का कष्टान्त ।। 18

वारूणि विष अमृत फिर निकला एक स्त्रोत से मित्र ।
उद्यम भी था एक वहॉ पर फल भिन्नता विचित्र ।।
सबके अध्यवसाय न फलते सुफल न होते लब्ध ।
जीव मात्र के साथ लगा है अति अमोघ प्रारब्ध ।। 19

यदि अशक्त निर्धन दुख पाते यह उनका है भाग्य ।
धनपति भी धरता देखा है यहॉ प्रबल वैराग्य ।।
देख देन्य दुख नित इस भव के स्थिर रहता है प्रज्ञ ।
विफलगर्भ उद्यम समताहित करते हैं कुछ अज्ञ ।। 20

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

जो विपक्षगण करता मेरे शासन पर आक्षेप ।
मम प्रशान्त मन मैं न उपजता कभी विषम विक्षेप ।
आदिकाल से करता आया मानव बहु अपराध ।
तो भी करता प्रगति रहा है नर समाज निर्बाध ।। 21

कौन रोक सकता व्यसनों को यदि न स्वयं हो ज्ञान ।
यदुकुल वीर विधेय तीर्थ में बल निषिद्ध मदपान ।
स्वयं कृष्ण भी रोक न पाए मद्यप वाद-विवाद ।
अतः प्रजाकृत व्यसन रोध अक्षमता का न विषाद ।। 22

मनु नारद आपस्तम्बादिक याज्ञवल्क्य विद्वान ।
भीष्म शुक्र कौटिल्य कर गए बहुविधि दण्ड विधान ।
इससे होता यही प्रमाणित तब भी थे अपराध ।
मम शासन अपराध ग्रस्त है मिथ्या यह परिवाद ।। 23

मैं सकरूण हूँ अतः कर रहा विधि में विविध सुधार ।
क्रूर दण्ड का प्रबल विरोधी मुझको प्रिय अधिकार ।
अपराधी भी तो मानव है करूणा का है पात्र ।
पापघृणा के योग्य न पापी वह नर भटका मात्र ।। 24

भर देता है घाव समय सब यह शाश्वत सिद्धांत ।
वाद विनिर्णय न्यायालय में हो सदैव निर्भ्रान्त ।
इसमें कालक्षेप चिंता को सदा मानता व्यर्थ ।
विजयी सत्य अंत में होता झूठ सदा असमर्थ ।। 25

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

कहता कौंन कि हम सब वायस हैं सिंद्धांत विहीन ।
किसमें साहस जो मम दर्शन को बतलाए हीन ।
आत्म प्रशंसा पर की निंदा सुत पर भी संदेह ।
अवसर के अनुरूप विनिर्णय पद से केवल स्नेह ।। 26

क्षुद्रोन्मुख करना खग जन को हटा बृहत से ध्यान ।
नित्य विभाजित करते रहना कर भ्रम का आधान ।
स्वर्णिम आयति स्वप्न दिखाना करना निंद्य अतीत ।
इन सिद्धांतों के हम पालक अर्जित करते जीत ।। 27

शांतनुसुतकृत घोर प्रतिज्ञा का देखा परिणाम ।
वचनबद्धता को करता हूँ बस दूर से प्रणाम ।।
सभी जानते क्यों त्यागे थे दशरथ ने निज प्राण ।
वचनविविधता अतः मानता मैं दुखसे परित्राण ।। 28

और विभाजन हो द्विज गण का रहें संगठित काक ।
इसके लिए व्यूह रचना में निरत रहूँ दिनरात ।
जल में कंकड़ गिरते होता ज्यों तरंग विस्तार ।
द्वेष बीज का वपन कराता बहु विच्छेद प्रसार ।। 29

बक्रमार्ग अवलम्बन होता कभी कभी अनिवार्य ।
स्वयं वृहस्पति वक्री होते यह सबको स्वीकार्य ।।
वायस की वक्रता न सहता फिर क्यों विहग समाज ।
गया समय वह बीत हंस जब ऋजुता का था राज ।। 30

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

ऊटों तक की मान्य वक्र गति यदि शतरंजी चाल ।
विश्व खेल में देख वक्रता भ्रू कुंचित क्यों भाल ।।
तुम्हीं मानते सकल जगत ही लीला का विस्तार।
फिर क्यों ढ़ोते वृथा श्रेय का हेय गेय का भार ।। 31

दृष्टि त्रयी सम्पन्न क्रूर ग्रह मंगल शनि से मान्य ।
गुरू तक रखते तीन दृष्टियाँ क्या यह भी सम्मान्य ।।
एक दृष्टि को प्रज्ञ बताते जग में यद्यपि श्लाघ्य ।
नहीं हर सका वायस कुल का यह सिद्धांत अभाग्य ।। 32

द्विजगणपूज्य बना जो कल तक था अतीव खगनिंद्य।
प्रभविष्णुता चमत्कृत करती सत्ता की अभिनंद्य।
स्वस्तिवाचनादिक मृदु लगते अर्थ यदपि अज्ञेय।
मठाधीश तक आज मानते मम विरूदावलि गेय।। 33

निग्रह और अनुग्रह का हो प्राप्त जिसे अधिकार ।
जनवश कर्ता भूषित करते जिसको पद संभार ।।
जोड़-तोड़ में लब्ध जिसे है नैसर्गिक नैपुण्य ।
कौन देखता फिर उस जन का प्रकटित भी वैगुण्य ।। 34

मेरी हर यात्रा हो फलप्रद करता यही प्रयास।
करते जो जयघोष न होते मुझसे कभी निराश।
मेरा आश्रय ले बन बैठे धनपति आशातीत।
यद्यपि विगुण तदपि करते हैं सुखमय समय व्यतीत ।। 35

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

किसको नहीं रही अभिलाषा जन-जन करें प्रणाम।
“मां नमस्कुरू” कहा कृष्ण ने यही अकाट्य प्रमाण ।
सभी मनीषी मान्य श्रेष्ठ है जो शरणागति योग।
वही सिखाता मैं द्विजगण को देता हूं बहुभोग ।। 36

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई, कहते हैं, रघुनाथ।
मम अनुशासन मानें जोई, यही सत्य है बात।
दल में अनुशासन इस कारण मेरा है दृढ ध्येय।
निर्दय हो वैमत्य कुचलना मुझे अतः सुविधेय ।। 37

अप्रतिस्थाप्य सदा रहने के लिए महान् प्रयास।
करते रहते काक अतन्द्रित अविश्रांत अनिराश।
नहीं मराल तपस्या से कम रहना सत्तासीन।
लीन तुम्हारा मन हरि में मन मेरा आसनलीन ।। 38

सन्धि और विग्रह का तुमको व्याकरणिक है ज्ञान।
इनका कुशल प्रयोग जानता वायसराज महान।
पंचकोश साधते साधते हम सहस्त्रशः कोष।
मम सकार मूर्धन्य बन गया कैसे हंस सदोष ।। 39

तुम हो साधित स्वर हम तो हैं व्यंजन के आराधक ।
तुम समास के कुषल प्रयोक्ता विग्रह के हम साधक ।।
तुम प्रत्यय का मार्ग बताते जिससे हो अपवर्ग ।
बाधितपथ हों सकल विरोधी हमको प्रिय उपसर्ग ।। 40

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

तुम प्रत्यय के ज्ञाता कर्ता भोक्ता परम समर्थ ।
हमको प्रत्यय त्याज्य मात्र है अविस्वास से अर्थ ।
केवल छः रिपुओं से लड़ते मेरे शत्रु अनेक ।
असत और सत से भी दुष्कर मित्रामित्र विवेक ।। 41

आभिजात्य से रह अप्रभावित, करते अपना कार्य ।
हमें स्वयं के कुल की ही, सब रीति-नीति स्वीकार्य ।
स्वेच्छा से कहलाते पिछड़े, पर उच्चों का मान ।
मर्दित करते नित्य संगठन, बल पर काग सुजान ।। 42

कृष्ण वर्ण पर चढ़ सकता है मित्र कौंन सा रंग ।
नहीं कभी परिवर्तनीय है वायस जीवन ढ़ंग ।
निज संस्कृति रक्षण हर प्राणी का पहला कर्तव्य ।
भाव अवरता का अन्यों के प्रति है परिहर्तव्य ।। 43

चंचुपात कर हम परोक्ष भी करते हैं आघात ।
तुम मराल सहते पीड़ा कर अभिजन बाण निपात ।
शुद्धोधनसुतकरूणारक्षित मात्र तुम्हारे प्राण ।
दलबल सहित घेर लेते हम, पाता शत्रु न त्राण ।। 44

चेष्टा काकों की नीतिज्ञों द्वारा रही प्रशस्य
हम उद्यमरत सतत् सफलता इस कारण है वश्य ।
भली भांति हमको अवगत है प्रबल एकता शक्ति ।
स्वार्थ बांधता हमें जाति में इस कारण अनुरक्ति ।। 45

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

जिसने भी कर दिया एक भी अपकृत वायस साथ ।
पा अवसर अनुकूल आक्रमण करता ध्वान्क्षी व्रात ।
हम न चूकते कभी प्रकट करने में निज आक्रोश ।
रहे तुम्हारे पास तुम्हारी पूँजी खग अनुक्रोश ।। 46

हम पर आरोपित यदि करते नारी जन अपमान ।
तो शास्त्रों ने किया पूर्व ही इसका रूचिर विधान ।
यदि नारी बन सबल करे बहु अनुचित अत्याचार ।
शूर्पणखा या प्रबल ताड़का वत पाये व्यवहार ।। 47

राम और रामानुज हमको दिखा गए हैं राह ।
अन्य प्रमाणों की क्या होगी इस वायस को चाह ।
अब तो प्रजा स्वयं बतलाती हमकों भी अवतार ।
प्रश्न परिधि में अतः न आते मम लीला विस्तार ।। 48

जब सब है प्रभुजात हमारा हरि शिशुत्व है सिद्ध ।
रहें क्यों न युवराज सदृश हम धृत प्रभाव अतिऋद्ध ।
नरपति भी षष्ठांश भाग हरता शास्त्रों में मान्य ।
शुल्क हीन रक्षा क्या संभव समझो हंस वदान्य ।। 49

कल तक रहे प्रबल आक्रांता सहयोगी हैं आज ।
चकित-थकित अवसाद ग्रस्त है अब मम वैरि समाज ।
है उपांशु वध तक सम्मत यदि सधता कार्य महान् ।
विष्णुगुप्तकृत अर्थशास्त्र का हमें सूक्ष्मतः ज्ञान ।। 50

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

ले न कभी नृप आचार्यो से अभियानों की राय ।
कभी न पूछे कूट योजना, प्रणिधिक कुटिल उपाय ।
वे करूणामय व्यक्ति न सम्मत करते कुत्सित यत्न ।
शुक्रनीति का पालन करते हम भी अतः सयत्न ।। 51

भली भांति जानते, न होगें, सब खग एक समान ।
नारा दे देकर समता का ही हम बनें प्रधान ।
स्वप्न मधुर यदि रूचिकर लगते देखे उनको लोक ।
हम जागृत रहते रजनी में गतशंका गतशोक ।। 52

आश्रम, नृपगृह, देवालय में जाना खाली हाथ ।
वर्जित करते शास्त्र हमारे रहे ज्ञात यह बात ।
सोपहार इस कारण जाता मै मान्यों के पास ।
जन से यही अपेक्षित धारे शास्त्र वचन विश्वास ।। 53

हेय नहीं याचना लोक हित यदि उससे हो साध्य ।
बलि से भूमि मांगते देखो देवों के आराध्य ।
वायस दल का अतः निंद्य क्यों जन से धन आदान ।
जिसका केवल लक्ष्य क्षेत्र में, उन्नति का आधान ।। 54

दुखद यही दुर्भाग्य देश में धन वितरण असमान ।
सबकी उन्नति में यह बाधा लगती मुझे महान ।।
वित्त पुनर्वितरण का करता हर संभग उद्योग ।
पाया प्रथम वार वायस कुल ने यह सुखद सुयोग ।। 55

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

शुक्ल वर्ण पर चढ सकता है हंस अन्य भी रंग ।
नहीं बदल सकते हम वायस अपना जीवन ढंग ।
तुम मौक्तिक चुगते हम हीरक अतः बनों मत ज्येष्ठ।
तम में छिप जानें को सत्वर वर्ण हमारा श्रेष्ठ ।। 56

देता है वसु तुम्हें हंस यदि शीतलता शुभ शांति ।
हमको वसु देता समुष्णता मादकता मुख कान्ति ।
तव वसु यदपि गभीर गहनता तो भी नही अमेय ।
मम वसु का गाम्भीर्य और परिमाण सदा अज्ञेय ।। 57

कराघात अवशोष्य तुम्हारा वसु है मित्र मराल ।
मम वसु तिमिरगुप्त वर्धनपर ज्यों ज्यों बीते काल ।
किन्तु हंत तव वसु द्रुत करता तृष्णा का अपहार ।
मम वसु वर्धमान भी करता नित नव तृषा प्रसार ।। 58

प्रकट रूप से मौक्तिक चुनते अतः मराल सब्रीड ।
अगणित हीरक हेम छिपाए इस वायस का नीड ।
केवल कोकिल काकप्रतारणक्षम देखी है मित्र ।
वही जानती भेद नीड़ के मधुछल अहा विचित्र ।। 59

लिया शतगुणित हमने कोकिल कृत छल का प्रतिशोध ।
किन्तु गुप्त यह तथ्य विडम्बित वायस यह जन बोध ।।
लोक सहानुभूति अर्जनक्षम कृतकिल्विष भी काक ।
अभिनय और प्रचार कराते सत्तारस परिपाक ।। 60

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

कर देते हैं दोष क्षमा सब यदि निज दल का व्यक्ति ।
परछिद्रान्वेषण में रखते हम केवल अनुरक्ति ।
कल्पलता आक्रामकता है यह बहुशः है सिद्ध ।
अब प्रशान्त के लिए विशेषण कायर हुआ प्रसिद्ध ।। 61

प्राणि वर्ग को निशा जागते उसमें संयमवान ।
सत्य निदर्शित स्वयं कर गए गीता में भगवान ।
नहीं दोष कुछ हमें प्रकृति ही करवाती सब कार्य ।
महावाक्य यह जान हुई अति राजनीति व्यवहार्य ।। 62

अन बूढ़े बूढ़े हैं तरते जो बूढ़े सब अंग ।
उक्ति बिहारी की सार्थक है राजनीति के संग ।।
यहाँ अधोगति भी शुभ होती पादप मूल समान ।
पुष्टि सबलता और तुंगता का देती वरदान ।। 63

पलित न होते केश हमारे शाश्वत यौवनवान ।
सीमित शक्ति इन्द्रियां होती मृषा हंस तव ज्ञान ।
वय के अन्तिम दिन तक रहते भोगावलि परिवृत्त ।
केवल अक्षम नर होता है, रस से पूर्व निवृत्त ।। 64

चला चुके आचार्य यहाँ पर अपने अपने पंथ ।
भरे हुए रमणी निन्दा से सकल हमारे ग्रंथ ।
समझो हंस ब्याज निन्दा की सघन अलंकृति रम्य ।
और अधिक कमनीय बनाया कौंशल अहा प्रणम्य ।। 65

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

निग्रह संभव नहीं प्रकृति अनुरूप भूत समुदाय ।
करता है सब क्रिया यही है गीता का अभिप्राय ।
फिर मराल क्यों वृथा दे रहे निग्रह का उपदेश ।
क्या मानते स्वयं को यदुकुल भूषण से सविशेष ।। 66

सकल समाज सुव्यग्र मांगता नारी के अधिकार ।
इसका सफल प्रयोग क्षेत्र है, मेरा ही परिवार ।
मेरी अनुपस्थिति में चलते मम भार्या आदेश ।
हम रखते आदर्श न देते केवल खग उपदेश ।। 67

पर संतति का पालन भी हम करते हंस अखेद ।
श्याम वर्ण में नहीं दखते लघु अंतर्गत भेद ॥
मृषा प्रवाद जन्य पीड़ा को वरटा सहती मौन ।
हंस समाज क्रूरतर होगा इस जगती पर कौन ।। 68

मनुकृत स्मृति का दल स्वकीय को रटा दिया उपदेश ।
पूजी जातीं जहां नारियां वह देवों का देश ।।
गुरूमाता सा आज मिल रहा भामिनि को सम्मान ।
गहरी जड़ें यहाँ संस्कृति की है यह दिव्य प्रमाण ।। 69

अर्जितपुष्कलपुण्य पुरूष ही होते होगें स्वस्थ ।
हम तो वसुधा पर ही रहकर निज को मानें स्वस्थ ।
इन्द्रोपम सुख भोग धरा पर ही जब हैं उपलब्ध ।
किसे करेंगे देवलोक के भावी सुख विप्रलब्ध ।। 70

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

वय आक्षेप बिन्दु बनता जब मेरा भव्य निवास ।
कह देता हूँ वायसता की यह है कीति सुबास ।
यह भव्यता हमारे गण का सामूहिक अभिमान ।
उच्च शिखर छू रहे बन्धु हम गूंज रहा जायगान ।। 71

सुनते ही यह वायसगण की छाती जाती फूल ।
नेता मन से मान मुझे वे चलते हैं अनुकूल ।
रहें अशिक्षित वे ऐसे ही हो जाएं धनवान ।
कल्प वृक्ष मेरे हित देखो वयगण का अज्ञान ।। 72

रहा अतीतकाल में काकों का विशेष सम्मान ।
भूतयज्ञबलिवैश्वदेव तक में है भागविधान ।
इनमें कभी विलोका तुमने किसी हंस का भाग ।
व्यर्थ बंधु क्यों फिर अलापते, निज वरता का राग ।। 73

दूर देश वासी निर्मोही आगत अतिथि समान ।
कौन मीन केतन का लोभी पर अर्जित बहु मान ।।
किसे काम्य है अधिक यहॉ पर जीवन मध्य विहार ।
कौन पंक के अधिक निकट है करो मराल विचार ।। 74

दोनों लेते रूचिर मीन केतन का नव आस्वाद ।
वायस परिसीमित क्यों फिर है जग में कटु परिवाद ।।
रस संतरण तुम्हारा शुभ क्यों वायस का क्यों निंद्य ।
कदाचार लघु कृत अभिजन कृत चेष्टा है अभिनंद्य ।। 75

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

छोड़ें मृषा उपाधि गरूड अब वे हैं नहीं द्विजेश ।
अब द्विजगण के हम स्वामी हैं, कृतविरोधनिःशेष ।
रिपुद्विजभंजक राजदण्ड से शोभित अब ये हाथ ।
बड़ी बड़ी शक्तियाँ मांगती वायसगण का साथ ।। 76

उरगनाश में वृथा विहगपति ने खोई निज शक्ति ।
हम लेते हैं कार्य उन्हीं से, कर अर्जित अनुरक्ति ।
यदि उनकी गति कुटिल वक्रता में हम भी हैं दक्ष ।
वे द्विजिह्व तो जीभ हमारी धरती ध्वनि शतलक्ष ।। 77

भोगवान वे प्रकृत किए अर्जित हमने बहु भोग ।
हम जानते कि विष से होते दूर बहुत से रोग ।
निधि रक्षकता में भी हमने सर्पो को दी हार ।
पटु अकर्णता धारण करते जब जन करें पुकार ।। 78

कौशिक गण से सुदृढ़ हमारा अलिखित है अनुबंध ।
दिन के शासक हम रजनी में घूमो तुम निर्बन्ध ।।
तजो खण्डहर कोटर तरू की भवन बनाओ भव्य ।
अप्रकट रहो दिवस में तम में करो पूर्ण मंतव्य ।। 79

उभय पक्ष हितकारी देखो हंस व्यवस्था नव्य ।
साहस अर्जित श्री वे भोगें पाते हम गंतव्य ।।
तिमिरोपात्त सकल बल उनका संघ हमारी शक्ति ।
हम अधिकार सुधा के भोगी उनमें धन आसक्ति ।। 80

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

हमसे सीखे जगत बसेरा करना कैसे साथ ।
अति विशाल भी रह लेता है तरू पर वायस व्रात ।
संघ शक्ति का हमसे बढ़कर अन्य प्रयोक्ता कौन ।
बल विक्रमधारी सुदीर्घ भी पक्षी धरते मौन ।। 81

नहीं व्यक्तिगत शौर्य आज के युग में फल प्रद भ्राता ।
धनबल, जनबल से जोड़ा है इससे हमने नाता ।।
वांछित दिषा ओर जनमत को उद्धत उन्मुख करना ।
नवयुग की यह युक्ति भूत की बातें रण में मरना ।। 82

तुम संतरण योग्यता भूषित होते नभ उड्डीन ।
वेगवान अति असत और सत के पार्थक्य प्रवीण ।
हम विपक्ष मन भाव जानने में हैं कुशल विशेष ।
दक्ष अनन्त व्यूह रचना में करनें अरिनिःशेष ।। 83

निर्बलता ही पाप बड़ा है यह नरेन्द्र का कहना ।
मान्य मुझे है क्योंकि अबल की नियति सभी कुछ सहना ।।
पाप कर्म का दण्ड अटल है अतः खेद क्या इसमें ।
पुण्य उसे मानता सबलता अभिवर्धित हो जिसमें ।। 84

उन्नत वर्धमान सत्वरगति अनुदानार्पितदृष्टि ।
बहु शिक्षण संस्थान कर रहे नव उपाधि संवृष्टि ।
इस आदर को ग्रहण न करना है धृष्टता विशेष ।
अतः मुदित मानद उपाधियाँ करता ग्रहण अशेष ।। 85

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

विद्या वही बनें जो नर की चिर विमुक्ति का हेतु ।
हमको भी यह मान्य यही है परममुक्ति का सेतु ।
पर विद्या पात्रता दिलाए, जिससे वित्त अवाप्ति ।
धन से धर्म तभी संभव है मित्र मोक्ष की प्राप्ति ।। 86

अतःहंस तुम करो प्रथमतः निज विद्या सुप्रयोग ।
हित साधन में प्रखर ज्ञान का हो शुभतर विनियोग ।
कागानुग्रह प्राप्त तुम्हारी हो दारिद्रय निवृत्ति ।
भोगो धन सुख प्रथम जीर्णवय को ही उचित विरक्ति ।। 87

कई हंस अब हैं मम सेवक, जिनका बस यह कार्य ।
मम अभीष्ट को कैसे करदें वे सत्वर व्यवहार्य ।
जो उद्यम सम्पन्न पूर्व ही उनको भी विधि मान्य ।
करने को सायास निरत है, प्रज्ञावान वदान्य ।। 88

यदि वाग्मिता प्रयोग करो तुम वायस कुल हित हेतु ।
तव प्रचार से लहरायें हम और तुंग नवकेतु ।
होगे पात्र पुरस्कारों के धन भी आशातीत ।
तुम पाओगे हंस सुनाओ काक प्रशंसा गीत ।। 89

नहीं तुम्हारे लिए कठिन है या यह कार्य नवीन ।
चित्त भीमजा का तुमने ही किया नृपति नललीन ।
नही चाहते किसी तरूणि को तुम दो मम संदेश ।
करो मात्र सुप्रचार जान ले हमको सारा देश ।। 90

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

वाग्वैभव सम्पन्न युक्तियुत कृत परतर्कनिरास ।
खण्डनपर निजमतदृढ़पोषक दर्शितमतिसुविलास ।।
गुण निरपेक्ष प्रकट गुणग्राही निर्मम महारसज्ञ ।
हो मम सदृष सहायक मेरा परमतवेत्ता प्रज्ञ ।। 91

विहग लोक के मध्य आज है वायसता वरदान ।
निजहितसाधनक्षम उद्यमरत भयदायक बलवान ।
बालरूप हरि से भी करने में सक्षम खिलवाड़ ।
गज सम कहाँ निरोधक्षमा है, हमको नयकृत बाड़ ।। 92

लोकमंगलार्थी मराल तुम मेरा भी यह लक्ष्य ।
किंतु भिन्न है मार्ग हमारा हमें राज्य संरक्ष्य ।
हमें लोकरंजन का कौशल ही फलप्रद है तात ।
मंगल या रंजन में दिखती नहीं असंगत बात ।। 93

हम दोनों ही हैं गोस्वामी अध्यवसायी धीर ।
निंदा से निरपेक्ष जयाजय समतायुत दृढ़वीर ।।
जनप्रतीतिरक्षाहितचिंतित संततभुक्तपरान्न ।
अनुगामीविस्तारयत्नरत अविरतभ्रमणप्रसन्न । 94

हम दोनों ही अबलाधर्षक वसुप्रिय बाधित काम ।
रामाकर्षित सुराभिलाषी दोनों को प्रिय नाम ।।
लोकभूतिचिन्तातुर अविरत कृतबहुयत्न परार्थ ।
आत्मोन्नतिरत सतत् न करते क्यों मिलकर पुरूषार्थ । 95

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

रिपु भवनस्थित राहु शुभद है और मंद रंध्रस्थ ।
दुर्जन भी हो सकता फलप्रद समुचित हुआ पदस्थ ।।
उच्चावस्था प्राप्त पाप ग्रह भी होते हैं इष्ट ।
तो वायस गण शासन लायेगा किस भाँति अनिष्ट ।। 96

राजतंत्र तुमने देखा था अब है यह जनतंत्र ।
हर लोकेच्छा पूर्ति समाश्वासन है सिद्धिद मंत्र ।
यहाँ गूढ़ रिपुदल की चिंता सदा सताती मित्र ।
नित नव परिवर्तन स्वनीति में फलप्रद सुकर अरित्र ।। 97

राजा था पालक रक्षक भी हम हैं प्रतिनिधि मात्र ।
प्रति निधि पर है दृष्टि हमारी विस्मृत पात्र अपात्र ।
एक बार दे देते जन को हम विराट अधिकार ।
फिर ले लेते अपने ऊपर सब विधि हित का भार ।। 98

छत्र चॅवर या राजदण्ड अब हुए विगत के चिन्ह ।
सत्ता सुख वैभव परम्परा हुई नहीं विच्छिन्न ।
ढ़ोए कौन स्वर्ण निज शिर पर सत्ता पारस हाथ ।
जाति दुर्ग वाणी महास्त्र है जन पीड़क दल साथ ।। 99

चन्द्र और रविकुल का करते अविश्रांत गुणगान ।
उत्तराधिकारी होता था ज्येष्ठ पुत्र गुणवान ।
आज भार सेवा का यदि हम निज सुत पर दें डाल ।
वंशवाद इसको कहते हो कुत्सित अनुचित चाल ।। 100

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

आठ दशक अब आयु हुई है उपजा है यह ज्ञान ।
कर सकते हैं युवक देश का द्रुतगति से कल्याण ।
सब देशों में हमें दिख रहा हंस युवा नृतृत्व ।
युवा शक्ति आह्वान देश हित मेरा नवल कृतित्व ।। 101

सेवा कार्य मांगता है बस प्रेम और बलिदान ।
निरभिमानिता और सजगता, नर की रूचि का ज्ञान ।
जनहित होना उग्र, विरोधी दल का प्रत्याख्यान ।
विषय वस्तु से बंधे न रहकर देना कटु व्याख्यान ।। 102

केवल ये आवश्यक गुण हैं, नहीं उपाधि समूह ।
मेधावी है वही ध्वस्त जो करे शत्रुकृत व्यूह ।
ये सब गुण स्वाभाविक ही है मेरे सुत में हंस ।
निंदित फिर क्यो प्रजातंत्र में बुधजन करते वंश ।। 103

विग्रह नहीं, मात्र छल, निग्रह, अब उपयोगी नीति ।
नहीं शत्रु से उतनी जितनी अपनों से है भीति ।
यद्यपि हंस शीर्ष पर चढ़ना बहुत कठिन है कार्य ।
रहना टिके श्रृंग पर होता कितनों को व्यवहार्य ।। 104

कई पुरोहित करते रहते ममहित बहुविधि यज्ञ ।
शतरूद्रिय मृत्युंजय जप-तप जिनसे मैं अनभिज्ञ ।
मैंने भी श्री सूक्त रट लिया करता हूं नित पाठ ।
बड़ी कठिनता से फल पय पर रह पाता दिन आठ ।। 105

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

यही मांगता, रहूँ शीर्ष पर जन का बन शिरमौर ।
रजत पात्र में खाऊँ प्रमुदित मैं सोने के कौर ।
मेरे कूट प्रयास सफल हों निष्फल रिपु षडयंत्र ।
रहे युगों तक कीर्ति हमारी चले सदा जनतंत्र ।। 106

हम सपूत हैं इस मिट्टी के गये नहीं परदेश ।
नहीं बनायीं गुप्त रूप से निधियाँ वहाँ अशेष ।
यहीं रहेगा, क्योंकि प्रजा का है, जो धन है पास ।
है देशज सम्पदा देश में ही क्यों हंस उदास ।। 107

अंतिम क्षण तक करूँ सतत मैं जन सेवा के कार्य ।
देश प्रगति में जनता माने, सदा मुझे अनिवार्य ।
हर दल हो लालायित पानें मेरा भूतिद साथ ।
सुमन नहीं आवश्यक, हो बस सुमन राषि बरसात ।। 108

यदि उपाय ये हमको देते हैं, अभीष्ट परिणाम ।
इससे अधिक और क्या होगा, प्रभविष्णुता प्रमाण ।
राजनीति के नवल विशारद करके शास्त्र प्रणीत ।
गाएंगें नव सिद्धांतों के उपयोगिता प्रगीत ।। 109

होकर भाव विभोर कहा यह वायस बलि नहि खात ।
हम भी हरिप्रति प्रेम विवश हो तड़पे हैं दिन-रात ।
वायस कुल की सूरदास ने जानी हरिप्रतिप्रीति ।
हंस न समझो मात्र तुम्हीं ने सीखी ईश प्रतीति ।। 110

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

धर्मान्धता विरूद्ध प्रकटतः करता नित्य प्रहार ।
तीर्थाटन फिर भी करता हूं लूं परलोक सुधार ।
और लोक में भी धार्मिकता से मिलता सम्मान ।
अतः धर्म गुरू संगति का भी रखना पड़ता ध्यान ।। 111

पत्र पुष्प फल अक्षत से यदि मिल सकता सुरधाम ।
तो भक्तों में क्यों न जोड़ ले वायस पति भी नाम ।
शरणागतशतलक्षपाप भी नहीं देखते राम ।
मैं भी शरण गहूँगा होगा जब जीवन उपराम ।। 112

नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं, ऐसा प्रभु का नाम ।
अंतिम क्षण में मैं भी लूँगा जाऊँगा सुरधाम ।
किसके लिए बनाए जग में जगकर्ता ने भोग ।।
और जिसके अविराम सक्रिय हों उसे कहां आराम । 113

रमा राम में मन मराल तव हो कुवृत्ति उपराम ।
रमा चरण में रमा चित्त मम हमको जग अभिराम ।।
क्रिया समुच्चय को न अभी खग देना हमें विराम ।
प्रतिपल सक्रिय विरोधी जिसके उसे कहॉ विश्राम ।। 114

शासक वर्ग उपस्थिति में हम कर बहुविधि सम्मान ।
साधुसंत जन की सेवा भी कर देते गतमान ।
गुप्त दान भी दे देते हैं, बहु अमूल्य उपहार ।
आड़े समय गुप्त धन ही तो लेगा हमें उबार ।। 115

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

और सिद्ध कर चुका प्रथम ही उद्धव का वृत्तांत ।
प्रेम भक्ति के आगे हारा विरस विषम वेदांत ।
अतः नहीं अध्यात्म क्षेत्र में भी तुम हमसे ज्येष्ठ ।
त्यागो भ्रम मराल अपने को अब मत जानों श्रेष्ठ ।। 116

तुम तप निरत अनेक वर्ष से पानें को कूटस्थ ।
हंस जान लो निशदिन रहता यह वायस कूटस्थ ।
शम, दम और तितिक्षा हममें पाते हैं सुविकास ।
उपरति का अभ्यास साधते जब अधिकार न पास ।। 117

बहु विपक्ष आघात झेलते सहते अनुचित वाक्य ।
ग्रहण न करते आक्षेपों को स्मृत करके मुनिशाक्य ।
जब आता अनुकूल समय तब करते दमन कठोर ।
जो धन से शमनीय चलाते उस पर शम का जोर ।। 118

नवधा भक्ति मध्य अति प्रिय है हमें दास का भाव ।
सेवक जब से बनें लोक के देखा नहीं अभाव ।
नर नारायण की सेवा से होकर हरि ने प्रीत ।
दिया अमेय हमें बल वैभव दी सत्ता पर जीत ।। 119

अब होता है विपुल धनागम बिन मांगे दिनरात ।
फलित कनक धारा स्तोत्र सा होता है प्रतिभात ।
इसका मात्र शतांश चढाता वेंकट पर प्रतिवर्ष ।।
इतर देवगण को कुछ देता टलता देव अमर्ष ।। 120

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

आश्रित निज अस्तित्व हेतु जो पर पर वह है मंद ।
किन्तु अन्य श्रम का फलभोगी परजीवी स्वच्छंद ।।
श्रमोपात्त जीविका धारते वे हैं बस अल्पज्ञ ।
अकृतकार्य कृतकार्य हो रहे उन्हें मानता प्रज्ञ ।। 121

अन्यवित्त बलपूर्वक छीने वह है कृत अपराध ।
श्रद्धाविहित अन्यधनकर्षण कुछ करते अविवाद ।।
अधिक लाभ का लोभ दिखाकर हरता धन वह धूर्त ।
सबसे कुशल वही जो करता परधन हरण अमूर्त ।। 122

विविध वर्ण युत विधि ने ही जब सर्जित किए विहंग ।
फिर क्यों हंस बजाते फिरते तुम एकत्व मृदंग ।
स्वयं कह गए कपिल न धरते जब तक गुण वैषम्य ।
नहीं प्रवृत्त सृजन होता है सृष्टि न होती रम्य । 123

अतः विषमता स्वाभाविक है समरसता प्रलयान्त ।
किसे विदेह भाव रूचिकर है लय है किसको कान्त ।
मनु जैसे आचार्य कह गए चार-चार पुरूषार्थ ।
धर्म मोक्ष तक नर को सीमित क्यों करते हो व्यर्थ । 124

हों सिंधुजा प्रसन्न तभी होती है धन सम्पत्ति ।
धन के बिना धर्म क्या संभव मेरी यह प्रतिपत्ति ।
रहने दो तुम अतः विहगजन जीवन को सम्पूर्ण ।
क्रम विकास से लभ्य मोक्ष है, असफल होते तूर्ण । 125

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

रहे घोटते शास्त्र हंस सब हम प्रायोगिक जीव ।
हमें पता है रखना कैसे नव सत्ता की नीव ।
कहाँ एक मत हो पाते है, इस जग में विद्वान ।
एकवृत्ति हो सकते केवल, कृतनिजकुल अभिमान ।। 126

नाट्य शास्त्र तुम भरत मुनी का पढ़ते हो सायास ।
अभिनय की पटुता पायी है हमनें बिना प्रयास ।
थी अतीत में भाव प्रवणता अभिनय था तब साध्य ।
तर्कशील इस युग में नाटक अतिशय है दुस्साध्य ।। 127

तो भी पारंगति मम ऐसी होती खगता मुग्ध ।
भरत भूमि गो होती रहती अनुदिन विवश प्रदुग्ध ।
भूखा धर्म वत्स रह जाता होता है कृशकाय ।
फिर भी मुदित नित्य करता मम जय ध्वनि जन समुदाय ।। 128

लोभ और भय वश ही करता लोक यहाँ जयघोष ।
स्वार्थ सिद्धि अवरोध मात्र ही जनता है आक्रोष ।।
जान लोक की रीति न हमको होता कुछ भी रोष ।
पदारूढ़ता ही पावनता सत्ता च्युति ही दोष ।। 129

पालें सब हंसत्व विहगवर बढ़े मराल समाज ।
कूट योजना सफल न होने देगा वायस राज ।
विविध उपायों से करता हूं अत: पुष्टतर जाति ।
जाति भिन्न सब खग लगते हैं देखो आज अराति ॥ 130

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

क्यों न करे नव दर्शन सर्जन वायस राज अचूक ।
जब वैशेषिक जैसा दर्शन कहलाता औलूक ।
गुरू जब आदिम हम खगपति के हंस वृथा अभिमान ।
तजो क्योंकि हम विहग जाति को दे सकते हैं ज्ञान ।। 131

काँव काँव है मंत्र गूढ़ अति बस जानते सुजान ।
बीज मंत्र यह परम प्रभावी आगम सम्मत ज्ञान ।
रटते यही नित्य प्रति वायस उन्नति ही बस ध्येय ।
लौकिक दिव्य सभी मिल जाते हमको इससे श्रेय ।। 132

है ककार ब्रह्मा का वाचक हरि का नाम अकार ।
अनुस्वार ही ब्रह्म यहाँ है प्राण समीर वकार ।
लौकिक फल कामी हित भी यह मंत्र शक्ति संभार ।
तब ककार ही कामदेव है ब्रह्मा यहाँ अकार ।। 133

कामदेव हों प्रीत कामना करें हमारी पूर्ण ।
ब्रह्मा रचें नवीन वस्तुएं प्रचुर भोग के तूर्ण ।
प्राण शक्ति हम में हो अक्षय भोगें विविध पदार्थ ।
बीज मंत्र का यही हंस है लौकिक छिपा महार्थ ।। 134

सिद्ध हमारे हो जाते जब इसी मंत्र से कार्य ।
अतः न आगम तंत्रादिक तव लगते हैं अवधार्य ।
नानाशास्त्रभ्रमितधी रहते प्रायः असफल व्यक्ति ।
एक मंत्र, आचार्य एक ही एक लक्ष्य अनुरक्ति ।। 135

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

सब विधि हो कल्याण शिष्य का गुरू लेता यह भार ।
गुरू से अधिक शिष्य का करता कौंन यहाँ उपकार ।
सब कुछ गुरू पर छोड़ आधि से रहित घूमते मुक्त ।
काकभुशुंडि आदि गुरू अपने चेला हम उपयुक्त ।। 136

दीक्षित निज को मान लिया है धरकर गुरू का ध्यान ।
एकलव्यवत निश्चित अपना अब होगा कल्याण ।
यदि प्रत्यक्ष गुरू करते हैं पाल्य अनेक विधान ।
परतंत्री को हो सकता है किस विमुक्ति का ज्ञान ।। 137

लौकिक कार्य हमारे सधते दे आश्रम अनुदान ।
ले आशीष महंत आदि का कर कृत्रिम सम्मान ।
उनका वांछनीय वे पावें हमको दें आशीष ।
रहकर भी कुबेरवत उनपर रहें कृपालु गिरीश ।। 138

हंस बुराई भी क्या इसमें जो जपते हरिनाम ।
हरि की प्रिया स्वयं आ जाती बनती गुफा सुधाम ।
अनासक्त रह लेते हैं वे धन से भी परिवृत्त ।
बड़ा निगूढ़ रहस्य युक्त है सद्गुरू जीवन वृत्त ।। 139

कागासुर से जोड़ हमारा कल्पित दृढ़ संबंध ।
वैरि हमारे फैला सकते दुष्प्रचार दुर्गंध ।
कृष्ण निषूदित काग वस्तुतः छलिया था दनुजात ।
हम तो भक्त सदैव कृष्ण के वंदितपदजलजात ।। 140

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

तुम केवल वाहन ब्रह्मा के हम स्वतंत्र चिरजीव ।
तुम केवल सेवक हम रखते, नव सत्ता की नीव ।
मात्र शारदा वाहन होने से न दिव्य विज्ञान ।
सकता उतर स्वतः प्राणी के अंतर में सुमहान ।। 141

यदि ऐसा होता तो नर रथ नंदि घोष के अश्व ।
सुनकर गीता होते ज्ञानी, प्रणमित होता विश्व ।
महापुरूष सम्पर्क बताकर निज प्रभाव विस्तार ।
करनें जो तुम चले न होगा उससे कुछ निस्तार ।। 142

मरकर भी हम विपुल तांत्रिकों का करते उपकार ।
विविध सिद्धि अधिकार दिलाते, जिनके बहु अभिचार ।
तुमसे जल है विमल, अमलता धरणी की हमदक्ष ।
करते रहते सतत सुनिश्चित करके ग्रहण अभक्ष्य ।। 143

तर्क आज शासक जन मन का नहीं निरा विश्वास ।
अंधप्रतीतिरीतिकृत हम सब देख चुके हैं, ह्रास ।
यदि मानते विवाद इसे तुम तो किसने शास्त्रार्थ ।
किए प्रचारित पूर्व काल में बुधजन के लाभार्थ ।। 144

छल या जाति नहीं खोजे हैं, हमने निग्रह स्थान ।
पाते हेत्वाभास वितण्डा यहां रहे सम्मान ।
आज वितंडावाद हमारा निन्दनीय क्यों तात ।
वाद हमारे कोलाहल क्यों होते हैं, प्रतिभात ।। 145

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

ज्ञान योग के तुम व्याख्याता हम हंै कर्म प्रधान ।
कर्मयोग के गहन तत्व का रखते सम्यक् ज्ञान ।
निर्विकार रहते निष्फलता या कि सफलता देख ।
आसनस्थ दृष्टा बन पढ़ते, खगता दुःख आलेख ।। 146

गुणसंबंधछेद का तुम यदि देते हो उपदेश ।
विगुण व्यक्ति को देख हंस क्यों मन में आता क्लेश ।
कहा ब्रह्म वेद्धव्य बाणवत् आत्मा को तुम मान ।
परब्रह्म के प्रति भी हिंसा को देते सम्मान ।। 147

जब सब मिथ्या ही है जग में कहाँ पाप फिर पुण्य ।
कहाँ सुजनता या दुर्जनता गुणवत्ता वैगुण्य ।
हम रहते निद्र्वद्व सदा ही जग होता उपभुक्त ।
हो पाते निद्र्वंद्व हंस तुम होकर जीवन्मुक्त ।। 148

उत्तम नाम मात्र से कोई बन जाता न महान ।
क्या माधुत्व था मधु दानव में सबको है यह ज्ञान ।
कितनों का मंगल करता है मंगल ग्रह यह तथ्य ।
चित्रा की राक्षस गण गणना सुविदित सबको सत्य ।। 149।।

मात्र हंस कहलानें से क्या हो तुम हंस समान ।
जो त्रिभुवन को देता प्रतिदिन आभा का वरदान ।
लोकमान्य हम बिना धरे ही खग विराट अभिधान ।
संज्ञा नहीं क्रिया करवाती नर को यहाँ महान ।। 150 ।।

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

स्वयं बुद्ध कर गए आत्म अनुभव से यह उपदिष्ट ।
मध्यम मार्ग जगत में अबसे, साधक को हो इष्ट ।
अतः तीव्र वैराग्य मुमुक्षा जनित तपस्या घोर ।
नहीं सर्वदा ले जा सकती उस शाश्वत की ओर ।। 151 ।।

जो असार से भी रस ले ले मेरे मत में श्रेष्ठ ।
बस असारता का प्रतिपादन नहीं बनाता ज्येष्ठ ।।
सुख की अभिलाषा न पाप है नहीं देखना स्वप्न ।
क्या दोगे तुम प्राणि वर्ग को बता जगत दुःस्वप्न ।। 152

जग होता असार होती यदि रसा मात्र दोषाकर ।
परिकृमण उसका क्यों करता सादर शुभ दोषाकर ।।
इसके गुण से मुग्ध देव तक नहीं मात्र यह माटी ।
गंधवती आकृष्ट चन्द्र वंषज भी यह परिपाटी ।। 153

भोग त्याग का उचित संतुलन रहा मनीषी मान्य ।
अतःन वायस वर्ग हेय है समझो हंस वदान्य ।
क्या असारता ज्ञेय बिना ही हुए भोग में लीन ।
लगें दूर के ढोल सुहानें, समझो बात महीन ।। 154

नीचे आना लोकभूतिहित अवतारों का अर्थ ।
इसके बिना विश्व मंगल में प्रभु भी नहीं समर्थ ।।
निम्न दिशा अवतरण हमारा जनोद्धार हित मित्र ।
धरोद्धरण के लिये कोलता हरि ने धरी विचित्र ।। 155

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

कलिल प्रवेश बिना संभव क्या आपद् ग्रस्त बचाना ।
माया ज्ञान बिना मायावी अरि को कठिन हराना ।।
कूट युद्ध के प्रखर प्रणेता मान्य यहाँ उशना से ।
वही कुशल जो निज दल क्षति के बिना अराति विनाशे ।। 156

तुम रस में तैरते यहाँ हम करते मृत पशु भोज ।
देख रहे हैं हम जीवों को भूपर मरते रोज ।
तुम्ही बताओ किसको होगा, जग असारता ज्ञान ।
जो मरघट में रहता या जो गिरि पर धरता ध्यान ।। 157

सहसा चंचुपतित यदि होता हमसे खाद्यपदार्थ ।
त्याग मान लेते हैं उसको सधता है परमार्थ ।
"तेन त्यक्तेन भुंजीथा:" का शुभ उपनिषद विचार ।
जाता कौंध हमारे मन में मिलती शान्ति अपार ।। 158

तुम हो हंस परम पद कामी हम पद में संतुष्ट ।
तुम अक्षय सुख के अभिलाषी हम लघु सुख में तुष्ट ।
तुम्हें समाधि अभीष्ट किंतु हम रचते भव्य समाधि ।
तुम उपाधि त्यागते धारते हम नित नवल उपाधि ।। 159

योगी तुम मानते स्वयं को सहस्त्रार अतिक्रांत ।
मूलाधार चक्र पर बैठे हम भी हैं निर्भ्रांत ।
सकल भुवन स्वामिनी जहाँ पर सोई शक्ति विराट ।
शक्ति समाराधक हम बैठे कब खुल पड़े कपाट ।। 160

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

इडा पिंगला वश्य तुम्हें है इडा वश्य बस हमको ।
कार्य सद्धि जिससे हो जाये योग काम्य इस जनको ।।
अणिमादिक नव महा सिद्धियाँ हों अवाप्त खग तुमको ।
भ्रांति विभक्ति सिद्धियुग ही बस सर्वकामप्रद हमको ।। 161

उर्ध्व संचरण परम शक्ति का हमें नहीं अभिप्रेत ।
अधः प्रसार लोकहितकारी वसुधा बनें न रेत ।
प्रत्याहार विरूद्ध प्रकृति के अतः नहीं स्वीकार्य ।
“खानि परान्चि स्वयंभू व्यतृणत” हो तुमको अवधार्य ।। 162

बहिर्गामिता इन्द्रियगण की प्रभुकृत ही जब मित्र ।
तदपि प्रतीपाचार निरत तुम है यह तथ्य विचित्र ।
प्रत्याहार तुम्हें ही शुभ हो हमको प्रत्याहार ।
विजितधारणाशक्ति चलाता पटु शासन व्यवहार ।। 163

नहीं धारणाबद्ध चित्त से शक्य विकल्प विचार ।
जो हर क्षण अनिवार्य यहाँ पर अथवा होगी हार ।
रहें धारणबद्ध इतरजन गुप्त काग षड़यंत्र ।
राजनीति में जय का यह है बहुल परीक्षित मंत्र ।। 164

ढंका सत्य का मुख हिरण्य से कहते हैं ईशादि ।
ऋषि गण सम्मत तथ्य भासता मुझको यहाँ अनादि ।।
यदि आवृत्त सत्य मैं करता व्यय करके बहु हेम ।
गर्हय न यह आचार न वांछित किसको जग में क्षेम ।। 165

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

अतिथि आगमन संसूचक था कल तक बलिभुज काग ।
द्योतक आज प्रगति का, अर्जित बहुजन दृढ़ अनुराग ।
कतिपय जन श्रद्धा की दात्री अन्तर्मुखता हंस ।
बहिर्गामिता फलित कीर्ति में स्नापित हैं मम वंश ।। 166

तुम कहते मायामय जग का कारण है अध्यास ।
वर्ण हीन है तदपि दीखता नीला यह आकाश ।
कुछ दिखना कुछ होना जग में है नैसर्गिक मित्र ॥
प्राकृत हम सब जीव न इसमें कुछ भी हंस विचित्र ।। 167

हरि वदनांतर विष्ट जानते, माया के सब भेद ।
सहज ज्ञान है लभ्य जिसे तुम पाते हंस सखेद ।
दूर-दूर देशों का चाहे तुमको सम्यक ज्ञान ।
स्वार्थ सिद्ध दायक हमको तो बस क्षेत्रिय संज्ञान ।। 168

क्षेत्रज्ञता स्वयं गीता में करते प्रभु उपदिष्ट ।
उसका पालन वायसगणकृत लगता तुम्हें अनिष्ट ।
क्षेत्र हमारे लिए प्रमुख है, हम क्षेत्रज्ञ सुविज्ञ ।
इसे विखण्डनवृत्ति कहेंगे, केवल जन अनभिज्ञ ।। 169

देशान्तर में भ्रमित क्लेशयुत मात्र जीविका हेतु ।
हम लघुक्षेत्र संचरण करके भी लहराते केतु ।
तुम निर्भर हो मात्र प्रकृति पर हम दोहन में दक्ष ।
सह्य नही इस कारण हमको अति लघु भी प्रतिपक्ष ।। 170

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

पुष्कलार्थ गर्भित प्रशस्य है, यहाँ नहीं अब गान ।
कर्कशता बहुविधि असारता पाती है सम्मान ।
एकवर्णमयता के मानी वायस हुए विशेष ।
विविधवर्णता हेय मानते पुराकाल अवशेष ।। 171

स्वयं गरूड तक को जो शिक्षा दे सकते थे धीर ।
काकभुशुंडि हमारे पूर्वज अब भी हैं सशरीर ।
अतः अन्य कोई पाखंडी दे न हमें उपदेश ।
ऋणी हमारे पूर्वज के हैं, हरि वाहन विहगेश ।। 172

उपजा विश्व हिरण्यगर्भ से अण्डज सारी सृष्टि ।
अतः श्रेष्ठ हम अण्डज ही है, डालें नर न कुदृष्टि ।
और वरेण्य व्यक्ति का शासन ही होता विधि मान्य ।
अतः जरायुज आदिक की है सत्ता हमें अमान्य ।। 173

अश्रुपात रोमांच आदि सब हमको होते हंस ।
जब सुनते हैं राम कथा के हम कुछ अद्भुत अंश ।
काकभुशुंडि शाप विवरण सुन विह्वल होता चित्त ।
शापित भी बन गये ज्ञानधन वायसगर्वनिमित्त ।। 174

नयन हानि जब इन्द्रसूनु की करते शर से राम ।
भर उठता है उर अमर्ष से यह क्या दण्ड विधान ।
आया काम अतः उनको प्रिय लगा अशुचि भी गिद्ध ।
प्रीति रीति सब स्वार्थ जन्य है इससे होता सिद्ध ।। 175

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

नहीं तुम्हारे शास्त्र समझ में आते मुझको मित्र ।
जिससे है उद्भूत सकल यह विष्व प्रपंच विचित्र ।
उसे नपुंसक लिंग में रखते ब्रहम कोप भयहीन ।
करते आए भूल यहाँ पर पाणिनि तक प्राचीन ।। 176

जो कुछ है उद्भूत पूर्ण से अपने में है पूर्ण ।
अतः न बॉटो पाप पुण्य में जीवन है संपूर्ण ।।
कौन क्रिया निर्दोष पूर्णतः शुभ है कौन विचार ।
किसको कहो विकार महत का जग यह स्वयं विकार ।। 177

यहाँ कोटिशः जीव मात्र जो चल सकते हैं भू पर ।
नभ संचरण योग्यता भूषित खग उनसे हैं ऊपर ।।
प्राणिजात को तुम पशु कहते ईष्वर तक को पशुपति ।
निन्दक सर्जित शास्त्रों में हो कैसे सबकी अभिरूचि ।। 178

समझो हमें न तुच्छ भूत बलि के शाश्वत हम पात्र ।
कृष्ण वर्ण सादृष्य प्रकाशक, है हम सबका गात्र ।
काग पठंता धाई धाई शबरनाथ कृत मंत्र ।
करता सिद्ध कि नाम हमारा साधक साधन यंत्र ।। 179

सुप्रकट मम कालिमा जगत में पर जिनकी है गूढ़ ।
वे ही कृती प्रसिद्ध आज है उच्चासन आरूढ़ ।।
पाप पुण्य धारणा गुणात्मक निकष नहीं परिमाणं ।
न्यूनाधिक्य कालिमा का क्या है पूज्यता प्रमाण ।। 180

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

आनन्दान्वेषी हो, जाते तुम कांतार समोद ।
हम आनन्दान्वेषी भोगें नव कांता रस मोद ।
होता सत्य प्राप्त यदि वन में होते मुक्त किरात ।
मन भीतर ही सत्य छिपा है प्रिय मुझको यह बात ।। 181

तुम विचार शून्यता अवस्था मन को देते मित्र ।
लोक विचार शून्यताकारी मम कौशल सुविचित्र ।
आसन से आरंभ साधना अष्टम अंग समाधि ।
आसनान्त साधना हमारी आसन सिद्धि समाधि ।। 182

रटो हंस तुम सोहऽम निशदिन पाने को निर्वाण ।
हमें अहम से काम अभी है करना नव निर्माण ।
बड़े-बड़ों के हाथों से भी रोटी लेते छीन ।
तुम सम्मान वृत्ति कामी हो बैठो चिर तक दीन ।। 183

रहें मारदाहक पूजिततव जिनके तनुज कुमार ।
धारो तुम अकामता हमको प्रिय हैं रसावतार ।।
कहते आत्म विभूति काम को, जिनकी संतति काम ।
प्रमा रहित में रमों हमें तो रमा रमण से काम ।। 184

दमयंती के दूत बने तुम नल से हुआ मिलाप ।
विधि का ही विधान था परिणय क्या भवदीय प्रताप।
प्रणय हमारा अशुभ तुम्हारी हर लीला है गेय ।
हर उदात्त घटना का लेते पटुता से तुम श्रेय ।। 185

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

कालिदास ने यहाँ बनाया एक मेघ को दूत ।
लगा अचेतन अनिलासितगति उन्हें दक्ष जीमूत ।।
पवनप्रेष्य संदेश लगा है धोयी को भी मित्र ।
दौत्य योग्य श्री हर्ष समझते तुमको यह न विचित्र ।। 186

कौन जानता प्रिय तक पहुँचे थे वे मधु संदेष ।
पर निश्चित है प्रज्ञोपेक्षी रहा सदा यह देश ।।
यदि वाग्मिता हमारी होती अभिजन से सुप्रयुक्त ।
हो जाते कृतकार्य आषु ही निजप्रियतमावियुक्त ।। 187

श्वानी सरमा तक का होता वेदों में उल्लेख ।
ऋषिगण तक से रहे उपेक्षित हम यह विधि का लेख ।।
वर्ण और स्वर का जग स्वीकृत आर्यों का अनुराग ।
बने भेद के स्त्रोत वही यह जनता परम विराग ।। 188

संधि और विग्रह के ज्ञाता और प्रयोक्ता श्रेष्ठ ।
हम हैं हंस ग्रंथजा विद्या से प्रयोग है ज्येष्ठ ।
द्वैधीभाव प्रयोग क्षेत्र में वैचक्षण्य महान् ।
अर्जित कर हम बनें अप्रतिरथ फलप्रद मम विज्ञान ।। 189

विशेषज्ञ हम हैं विभक्ति के साध्य तुम्हें है योग ।
सद्यः फलद् समुद्यम में ही करते बल विनियोग ।
जब आसन्न फलोदय होता आते लेने श्रेय ।
परकृत सब वैफल्य बताना रहता मेरा ध्येय ।। 190

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

सुप्तिङ्न्त से जो परिभाषित उस पद में अधिकार ।
रहे हंस तव हम पर छोड़ो गुरूतर पद का भार ।
तुम अविनश्वर पद उद्यमरत रहो पंथ वह श्रेय ।
नष्वर पद वायस हित छोड़ो हमको यही विधेय ।। 191।।

शीतलता तुंगता धवलता हिमगिरि जैसी कौन ।
चहेगा यदि जीवन होता वहाँ सर्वथा मौन ।।
वह शुभ्रता निरर्थ बने जो जीवनहीन प्रसार ।
कर्दमयुत जलष्लाघ्य जहाॅं पर धरें जलज आकार । 192

चुप होने को विवश सभी खग उठता जब समवेत ।
कर्कशतम आक्रोश हमारा पाने को अभिप्रेत ।
शब्द ब्रहम के तुम अध्येता हम सुविज्ञ आचार्य ।
सफल प्रयोक्ता शब्द शक्ति के जिसका वेग अवार्य ।। 193

अभिनव मापदण्ड लय स्वर के
नव रस निकष बनाए ।
कर आचरण नीति निर्धारित,
नव्य प्रयोग दिखाए ।
ढोए कौन अतीत भार को,
किसके पास समय है ।
निकला जाता समय भोग लो,
लघु वय है बहु भय है ।। 194

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

कर्कशता के भेद अयुत हैं,
और सूक्ष्मता बहुविधि ।
दांव पेंच से पूर्ण भरी है,
निम्न उड़ानों की विधि ।
इसमें अर्जित कौशल को ही,
जगत मान है देता ।
उच्च उड़ानें आज व्यर्थ है,
वायस आज विजेता ।। 195

कला पारखी कुशल श्लाघ्य हैं खंडित मिश्रित बिम्ब ।
तनिमा आज प्रशस्य पयोधर पुष्ट न श्रोणी बिम्ब ।
हम भी काव्य रसों के भेक्ता अलंकार प्रिय सत्व ।
श्रंगाराद्भुत वीभत्सादिक का अवगत है तत्व ।। 196

उपमा रूपक उत्प्रेक्षादिक ललित यमक विस्तार ।
तुमको हंस हर्षदायक हैं अनुप्रासिक संभार ।
हमें अपह्नुति और असंगति विषम विरोधाभास ।
व्याजस्तुति गूढ़ोक्ति श्लेष में सुख का होता भास ।। 197

पटु मुद्रालंकार देखकर होते मुदित अपार ।
हम दोनों ही हैं सुवर्णप्रिय पूजित लोकाधार ।
जाते नित्य सुरालय दोनों को विभूति अभिप्रेत ।
दोनों को है काम्य सदा ही आत्मोन्नयन विवेक ।। 198

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

विकल खोजते रहो वारि में तुम आत्मोचित भोज्य ।
निर्बलखगनीडाश्रित दिखता हमें विपुलतर भोज्य ।
आभिजात्य निंदक बनकर नित जितखगजनविष्वास ।
हम सहास जीते लेते हैं, इतर विहग निःष्वास ।। 199

संख्या बल से सत्य निरूपण,
होता आज जगत में ।
अचलस्थितिक्षम एकाकी भी,
ऋत था दूर विगत में ।
पुनः पुनः आवृत्ति पुष्ट हो,
असत विजय पाता है ।
घन-दल सघन आवरण रचकर,
रविकर को खाता है ।। 200

मानस में हे हंस करो जा,
पुनः सभूति बसेरा,
यहां कालिमा वर्धमान है,
लगता दूर सबेरा ।
पूज्या अब वे नहीं रहीं है,
जिनके तुम वाहन हो ।
किसे काम्य है ज्ञान सुधोदधि,
में चिर अवगाहन हो ।। 201

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

मणि उपलों से पृथक कर सको,
मिट्टी से यदि सोना ।
लोक मानता तभी सफलतर,
उस प्राणी का होना ।
जाओ खग तुम सुनो भूति प्रद,
सप्त स्वरों की तंत्री ।
कोलाहल में यहां निरत हैं,
और मुदित षडयंत्री ।। 202

नीर क्षीर का कुशल विवेचन,
राजहंस तुम छोड़ों,
केवल सार ग्रहण करनें का,
शाष्वत व्रत अब तोड़ों ।
सार-असार मिश्र पटु देखो,
आज कृती कहलाते ।
जो असार को सार सिद्ध कर दें,
वे वृती कहाते ।। 203

तरू से तरू तक जब फलदायक,
लगतीं छुद्र उड़ानें ।
मुक्त गगन में कौन प्रखरधी,
जानें की फिर ठाने ।
एकाक्षता बनी वरदायक,
सुगम लक्ष्य का साधन ।
दिखता केवल भोग काक को,
तुम्हें द्वैत का बंधन ।। 204

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

भोग मोक्ष दोनों का कामी,
प्राणी दुखी जगत में।
एक दृष्टियुत है निद्रवद्वी,
रूचि न जिसे आगत में ।
देना मत उपदेश लोक को,
पुनः हंस तुम आकर ।
पाओगें न पात्र श्रोता को,
सब खग वायस चाकर ।। 205

नहीं आज अभिनंद्य लोक में,
शुभ अनवद्य धवलता ।
मात्र लालिमा और कालिमा,
पाती नवल प्रबलता ।
मित्र तंुग उड्डयनशीलता,
सहय नहीं है जग को ।
बनती यह अक्षमता ज्ञापक,
इतर जाति के खग को ।। 206

अब भी जागो हंस देख लो,
अपने पीत वदन को ।
जाओ द्रुत हिमवान क्रोड में,
निर्मल वारि सदन को ।
मात्र कृष्ण मुखता होगी अब,
सत्ता की अधिकारी ।
जा बैठो एकान्त वास में,
शुचिता है यदि प्यारी ।। 207

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

कहा हंस ने जनबल संयुत, बनते कल्पित शूर ।
बिसराते यह तथ्य काल की गति अबूझ अति क्रूर ।
स्वार्थ रज्जु बांधती परस्पर जिनको वे क्या एक ।
रह सकते है परहितरक्षी जब विपदा अतिरेक ।। 208

मिथ्या मान वंश का, झूठी जाति और सम्मान ।
वायस गण यह सत्य मित्रवर जिस दिन लेगें जान
तव कृत छल का वायस गण को जिस दिन होगा बोध
कर विदीर्ण श्रंखला जाति की तोडेंगे अवरोध ।। 209

उस दिन उड़ जाएगी सत्ता, मान और नेतृत्व ।
जब होगा यह प्रकट स्वार्थ प्रेरित था, वह भ्रातृत्व ।
दिखती थी जो उन्नति वह था शठजन प्रेरित ह्रास ।
भीषण होगा समय उपस्थित पदधारी को त्रास ।। 210

बड़े बड़ों के शमित हो गए शीघ्र यहां जयगान ।
भूल गए जन जो बनते थे अवतारी सुमहान् ।
पुष्प् वृष्टि जिन पर होती थी, उनकी प्रतिमा तूर्ण ।
अपमानित कर ध्वस्त कर रही क्रुद्ध प्रजा सम्पूर्ण ।। 211

करो विवर्धित तुम मत वायस यह आकांक्षा वृत्त ।
जो बढ़ता जाता अनुदिन ही, होता पर न निवृत्त ।
कोई भी समृद्धि न कर पाई, जन को संतुष्ट ।
आकांक्षी जन को कर देता, लघु कारण भी रूष्ट ।। 212

1	2	3
4	5	6
7	8	9

नहीं समुद्यत मै करने को, कागों से शास्त्रार्थ ।
तुमको ही फल प्रद हों खोजे जो जागतिक महार्थ ।
वैषाखी तर्कों की लगती टिकता तभी असत्य ।
नहीं समर्थक वदनापेक्षी हो सकता है सत्य ।। 213

शासक रहो बनो श्रीमंडित चखो विविध आस्वाद ।
पर न उठाओ शास्त्र विपर्यय, हेतु अयुक्त विवाद ।
जो रस अनुभव गम्य न पाता, उसको विषम विवाद ।
एन्द्रिक रस से भिन्न न लाता परिणति में अवसाद ।। 214

पुस्तक पढ़कर समझ रहे जो निज को बहुत अभिज्ञ ।
रह जाते हैं मूल तत्व से, प्रायः वे अनभिज्ञ ।
यदि हो जाए ज्ञात रूग्ण को, बस औषधि का नाम ।
रोगोच्छेद नहीं संभव है, सविधि न हो यदि पान ।। 215

रोग दूर करना उस नर का सबसे दुष्कर कार्य ।
जिसको निज रूग्णता न कथमपि लगती हो स्वीकार्य ।
चिर परिचय से लगने लगते जिसको सहज विकार ।
वह निरोगता भी हो सकती, करता क्या स्वीकार ।। 216

करता वाद-विवाद ज्ञान का रूचिर दिखाता दंभ ।
नहीं छोड़ पाता वह पामर मादकता परिरंभ ।
ऐसे छद्म मुमुक्षु न पाते उस विद्या की गंध ।
जो दृढ़ मूल विरागवान को मिलती अमल अमंद ।। 217

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

नहीं तर्क से या कि प्रखरतर मेधा से वह प्राप्य ।
नहीं शास्त्र पाण्डित्य भार से भी वह वस्तु अवाप्य ।
देते सकल शास्त्र उसका बस हल्का सा संकेत ।
कैसे बुद्धि गम्य हो सकता, जो है विष्व निकेत ।। 218

राग द्वेष धूमायित जिनका नित रहता है चित्त ।
उसका शास्त्र विवेचन होता निजहितसिद्धि निमित्त ।
पूर्व पुरूष व्यसनातुरता को करें उदाहृत आज ।
नहीं तज्जनित पतन देखता आत्म विमूढ़ समाज ।। 219

नहीं अज्ञता निंद्य निंद्य है अल्प ज्ञान का दर्प ।
जिससे पाकर पुष्टि विषवमन करे अहम का सर्प ।
सीमित हानि स्वयं को, कुल को पहुँचा सकता अज्ञ ।
सकल समाज विपत्ति प्रदाता होता है अल्पज्ञ ।। 220

रूचिकर तुम्हें नहीं वाहनता हे धृतबुद्धि अमंद ।
ढ़ोने को हो विवश क्रूरगृह कहलाता जो मंद ।
रविसुत न्याय प्रियत्व न सीखा तर्क तुम्हारा पुष्ट ।
निजाचार से सिद्ध कर रहे, तुमही खगवर तुष्ट ।। 221

निज लाघव का निम्न उड़ानों में दे रहे प्रमाण ।
तुच्छ विषय विज्ञता न करती जग का कुछ कल्याण ।
मात्र उच्च व्योमस्थ जीव का होता दृष्टि प्रसार ।
पाता है जागृत ही जग में परहित का अधिकार ।। 222

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

स्वेच्छा से हम वसु में आते स्वैच्छिक कर विच्छेद ।
रहते हैं स्वतंत्र वायस तुम पराधीन यह भेद ।
तुम वसु में आशक्त पृथकता करती तुमको दीन ।
जड़ पदार्थ क्षय तुम्हें बनाता तत्क्षण ही श्रीहीन ।। 223

हम आसन जय कर गहते हैं यौगिक मार्ग सहर्ष ।
तुम आसन जय से पाते बस धन मद मान अमर्ष ।
मिलती तुम्हें समाधि अश्ममय देहपात के बाद ।
हम समाधि में नित्य डूबते पाते नव आह्लाद ।। 224

है आत्मा अक्रिय तो निष्क्रिरय क्या करले हम देह ।
कुछ ही दिन में ढह जाएगा, भूतविनिर्मित गेह ।
जो भी है उद्भूत प्रकृति से रहता नित गतिमान ।
कौन विज्ञ कर सकता अक्रियता का मूढ़ विधान ।। 225

कोटि कोटि जन्मांध कह उठें होता नहीं प्रकाश ।
अर्जित उनका कथन करेगा मात्र लोक उपहास ।
रवि समदर्शी हो फैलाता भुवनों में आलोक ।
क्या वह दोषी यदि दिवान्धता का उलूक को शोक ।। 226

सकलसमूहसदोष रोग को मानेगा फिर कौन ।
अतः धैर्य से धरना पड़ता, विज्ञ पुरूष को मौन ।
देख प्रशांत चित्तता उसकी वर्धमान आनन्द ।
आता है जिज्ञासु तृषाकुल पानें अमृत कंद ।। 227

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

सब कुछ पाकर भी पाओगे जब निज उर को रिक्त ।
तब खोजोगे विकल तृषित से होने रस से सिक्त ।
नहीं अवस्था ऐसी पाता जब तक यह संसार ।
मृगजल तुल्य न उसको लग सकता संसार असार ।। 228

हैं यद्यपि सब पात्र तृषा का वेग किन्तु है भिन्न ।
सार्थक उसकी मांग हो रहा जो अतीव नर खिन्न ।
जिसको लगता अभी पड़ रहे, सीधे मेरे दाव ।
उसके हेतु सुदूर अभी है यह अध्यात्म पड़ाव ।। 229

बोला हंस कहाँ संभव है,
अपनी प्रकृति बदलना ।
आत्म प्रवंचन ही होता है,
इतर व्यक्ति को छलना ।
जग के भोग पदार्थार्जन में,
निरत अतीव मनीषा ।
नहीं जानती भोगवाद की,
परिणति और विभीषा ।। 230

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

जब समृद्धिवान होकर भी,
जग न शान्ति पाएगा ।
क्लांत और परिश्रांत मनुज को,
विगत याद आएगा ।
प्रीति स्वार्थ का भक्ष्य ग्रास,
छल का प्रतीति जब होगी ।
निज हित साधन किस प्रकार भी,
मान्य नीति जब होगी ।। 231

बन जाएगा परम स्वार्थ प्रेरित,
तब रिपु जन जन का ।
अधिप त्रास बन बैठेगा जब,
विह्वलतर जन-मन का ।
गुंजित होगा जब दिगंत में,
निर्बल जन का क्रंदन ।
तब न करेगी प्रजा बलोद्धत,
शासक का अभिनन्दन ।। 232

तब आऊँगा मैं मानस से,
करने मानस क्षालित ।
विद्या सुरभि क्षीर से करने,
कृश नरता को पालित ।
तब तक काकावलि उलूक से,
होकर पूर्ण पराजित ।
बैठी होगी विनत वदन हो,
खग जन से धिक्कारित ।। 233

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

नहीं प्रकृति चिरकाल सहन,
करती औलूकी सत्ता ।
प्रासादस्थ खण्डहरवासी,
पाता नही महत्ता ।
शीघ्र कनकमद बन जाता है,
शासक बुद्धि विनाशक ।
स्वयं मेदिनी खा जाती है,
ऐसे भोगी त्रासक ।। 234

यदि त्यागूंगा निज स्वभाव को,
शुचिता और धवलता ।
रह जाएगी हंत! अपरिचित,
इनसे भावी खगता ।
होता जब आदर्श न कोई,
लक्ष्य शुभद पाने को ।
तब तक जिज्ञासा न जागती,
यत्न न अपनाने को ।। 235

यदि न रहा मैं जग समझेगा,
कल्पित मात्र अनघता ।
वंचित होगी अनुपम निधि से,
यह बेचारी खगता ।
समझाना है विहग वृंद को,
वे हंसत्व भरे हैं ।
वे भी हैं नभोग भोगातुर,
हो बस क्लेश धरे हैं ।। 236

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

कभी जान लेगें वायस भी,
असित आवरण भर है ।
उनके भीतर भी असीमनभ,
परमाभा निर्झर है ।
यदपि काग मतिमान मनीषा,
बिखर रही है भव में ।
इसे मोड़कर ले जाना है,
अन्तः जग अभिनव में ।। 237

यह उत्तर दे उत्तर दिक को हंस हुआ उड्डीन ।
विजयी वायस दर्प और भी आज हो गया पीन ।।
विहग व्रातकृत सुनकर वंदन और उच्च जयघोष ।
जा बैठा अष्वस्थ शीर्ष पर अभिवर्धित संतोष ।। 238

पर आया जब याद चतुर्दिक बढ़ता शत्रु प्रभाव ।
तत्क्षण उभरा काक वदन पर गुरू चिंता का भाव ।।
वचन हंस के गँज रहे थे कंपित उर था काग ।
धनशमनीय नहीं अब लगता कौषिक सत्ता राग ।। 239

असंतुष्ट कुछ काक वंधु ही कर उलूक से मेल ।
मम विरूद्ध चाहते खेलना कटु षड़यंत्री खेल ।।
सत्ता च्युति की पूर्व भूमिका क्या यह स्वजन विरोध ।
सबल उलूक चाहते लेना क्या घातक प्रतिशोध ।। 240

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

आजीवन उद्यमरत रहकर भी चिंता से दूर ।
रह न सका मैं हंत ! काल की गति कितनी है क्रूर ।।
त्याग प्रपंच हंस अनुगामी बना न क्यों मैं मंद ।
अल्प शेष जो वय उसमें तो रह लेता स्वछंद ।। 241

चला गया है हंस और है अविदित पथ गंतव्य ।
सखा न अब विष्वस्त सहायक कहूं किसे मंतव्य ।।
पंख न इतने सबल भर सकूं लम्बी एक उड़ान ।
है आरक्त प्रतीची बढ़ता तम बढ़ रही थकान ।। 242

यदि पुकारता आर्त भाव से उच्च स्वरों से हंस ।
निर्बल जान मुझे रौंदेगा तत्क्षण मेरा वंश ।।
आसन आज विवषता मेरी बना एक तनु त्राण ।
किसे ज्ञात वायस के कितने परितापित हैं प्राण ।। 243

चिरपोषित निज पथ से विचलन मानेंगे खग व्रात ।
हंस करूं यदि मैं अनुमोदित या स्वीकृत तव बात ।
चिर विरोध ही श्लाघ्य हमारे कुल की है यह रीति ।।
अब अस्तित्व बन बैठी अतः पाल्य यह नीति ।। 244

उधर हंस अतिक्रान्त कर] हिमगिरि को अविषाद ।
मानस में कृतहरनमन] उतरा श्रुतखगनाद ।। 245 nkgk

था पुरतः शिवधाम, शमद मारभयहरण नित ।
प्रसृत कुमार सुधाम, विशदोन्नत कैलास नग । 246 सोरठा

1	2	3
4	5	6
7	8	9
10	11	12

% bfr %